

मेसर्स बालाजी ट्रेडर्स

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

(आपराधिक अपील सं. 2899 सन् 2025)

05 जून 2025

[न्यायमूर्ति संजय करोल और न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा]

विचारणीय मुद्दा

क्या उच्च न्यायालय का यह कहना उचित था कि चूंकि धारा 383 भा.दं.सं. के तहत उद्घापन का कोई अपराध अभिकथित नहीं है, इसलिए धारा 387 भा.दं.सं. के तहत भी कोई अपराध नहीं बनता है।

हेडनोट्स

दंड संहिता, 1860 - धारा 383, 387 – दिनांक 22.05.2022 को, जब परिवादी अपने घर की ओर जा रहा था, तो आरोपियों ने अपने हाथों में राइफल लिए तीन अज्ञात व्यक्तियों के साथ उसे रोका और सुपारी का व्यवसाय बंद करने की धमकी दी - उन्होंने आगे धमकी दी कि वह व्यवसाय तभी जारी रख सकता है जब वह आरोपी व्यक्ति को प्रति माह पांच लाख रुपये का भुगतान करे - परिवादी के इनकार करने पर, आरोपियों ने न केवल उसे पीटा, बल्कि उसका अपहरण करने की भी कोशिश की - परिवादी ने दं.प्र.सं. की धारा 200 के तहत शिकायत दर्ज कराई - विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्ति के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला पाया और उसे भा.दं.सं. की धारा 387 के तहत समन जारी किया - आरोपी व्यक्ति ने समन आदेश को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत आवेदन दायर किया- उच्च न्यायालय ने समन आदेश रद्द कर दिया – औचित्य:

धारित किया गया: उद्घापन से संबंधित सभी धाराओं पर एक नज़र डालने से उद्घापन के वास्तविक कारित किए जाने और उद्घापन करने के उद्देश्य से किसी व्यक्ति को धमकाने की

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

प्रक्रिया के बीच स्पष्ट अंतर पता चलेगा - यह धारा 386 (384 भा.दं.सं. का एक गंभीर रूप) और 387 भा.दं.सं. के संदर्भ में कहा जा सकता है कि पहले वाला अपने आप में एक कार्य है , जबकि बाद वाला प्रक्रिया है ; यह उद्घापन का अपराध करने से पहले की एक अवस्था है - विधानमंडल ने इसे एक अलग अपराध बनाकर इस प्रक्रिया को आपराधिक बनाने के लिए पर्याप्त सावधानी बरती थी - इसलिए, उद्घापन का अपराध करना इस धारा के तहत अपराध के लिए अनिवार्य नहीं है - यह निष्कर्ष निकालना सुरक्षित है कि भा .दं.सं. की धारा 387 के तहत अभियोजन के लिए, संपत्ति की डिलीवरी आवश्यक नहीं है - जहां तक रद्द करने का संबंध है , यह तय है कि रद्द करने की शक्ति को 'दुर्लभतम मामलों' में सावधानी के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि एक सामान्य नियम के रूप में - उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया तर्क, पहली नजर में, त्रुटिपूर्ण और गलत है - जब विधानमंडल ने अलग-अलग अवयवों और दंडों के साथ दो अलग-अलग अपराध बनाए हैं, तो एक के आवश्यक अवयव को दूसरे को सौंपना उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया सही दृष्टिकोण नहीं है - किसी व्यक्ति को धमकाना एक आरोपी को भा.दं.सं. की धारा 387 के तहत अपराध का दोषी बना देगा; इसमें धारा 383 भा.दं.सं. के तहत उद्घापन के सभी तत्वों को पूरा करने की आवश्यकता नहीं है - वर्तमान मामला रद्द करने के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि धारा 387 भा.दं.सं. के तहत अभियोजन के लिए दो आवश्यक तत्व शिकायत में प्रथम दृष्टया प्रकट किए गए हैं, (क) कि परिवादी की ओर बंदूक तानकर उसे मृत्यु से भयभीत कर दिया है; और (ख) कि यह उस पर 5 लाख रुपये देने के लिए दबाव डालने के लिए किया गया था - इस प्रकार, 28.06.2024 का आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है , और शिकायत मामले से उत्पन्न कार्यवाही को विचारण न्यायालय की फाइल में बहाल किया जाता है। [पैरा 9, 10, 18, 25, 26, 27]

उद्धृत केस लॉ

तोलाराम रेलुमल बनाम बॉम्बे राज्य [1955] 1 एससीआर 158: (1954) 1 एससीसी 961 - अनुसरण किया गया।

आर.एस. नायक बनाम ए.आर. अंतुले [1986] 2 एससीआर 621: (1986) 2 एससीसी 716; बी.एन. जॉन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 7; दलीप कौर बनाम

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

जगनार सिंह [2009] 10 एससीआर 264: (2009) 14 एससीसी 696; नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य [2021] 4 एससीआर 1044: (2021) 19 एससीसी 401; एम. नारायणन नांबियार बनाम केरल राज्य, 1962 एससीसी ऑनलाइन एससी 85; आर. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता [2008] 14 एससीआर 1249: (2009) 1 एससीसी 516 – संदर्भित किया गया।

धनंजय @ धनधनजय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य [2007] 2 एससीआर 206: (2007) 14 एससीसी 768; हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल [1990] अनुपूरक 3 एससीआर 259: (1992) अनुपूरक 1 एससीसी 335; इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य [2007] 10 एससीआर 847: (2007) 12 एससीसी 1; मोतीभाई फूलाभाई पटेल एंड कंपनी बनाम आर. प्रसाद, 1968 एससीसी ऑनलाइन एससी 310; दिलीप कुमार शर्मा बनाम मध्य प्रदेश राज्य [1976] 2 एससीआर 289: (1976) 1 एससीसी 560; राधा बल्लभ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1995) अनुपूरक 3 एससीसी 119; गुरशरण सिंह बनाम पंजाब राज्य [1996] अनुपूरक 5 एससीआर 705: (1996) 10 एससीसी 190; सोमसुंदरम बनाम राज्य [2020] 10 एससीआर 27: (2020) 7 एससीसी 722 – को संदर्भित किया गया।

उद्धृत पुस्तकें और पत्रिकाएँ

मेरियम-वेबस्टर; संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, दसवां संस्करण 1999.

अधिनियमों की सूची

दंड संहिता, 1860; दंड प्रक्रिया संहिता, 1973।

कीवर्ड की सूची

उद्घापन; भा.दं.सं. की धारा 387; उद्घापन का वास्तविक कार्य; उद्घापन के उद्देश्य से किसी व्यक्ति को भय में डालना; संपत्ति का परिदान; उद्घापन के अवयव; निरस्तीकरण; निरस्तीकरण की शक्ति।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

वाद उद्धृत

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील सं. 2899 सन् 2025

ए 482 सं. 19550 सन् 2024 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के दिनांक 28.06.2024 के निर्णय एवं आदेश से,

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता : अनिलेन्द्र पाण्डेय, सुश्री प्रिया कश्यप, राज रंजय सिंह।

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता : शरीक अहमद, तारिक अहमद, सुनील कुमार वर्मा, विनय वत्स, मोहम्मद मोदस्सिर शम्स, मेसर्स अहमदी लॉ ऑफिस।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

न्यायमूर्ति संजय करोल

अनुमति प्रदान की गई

1. अपीलकर्ता-परिवादी द्वारा प्रस्तुत यह अपील, आपराधिक विविध आवेदन सं. 19550 सन् 2024 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28 जून, 2024 के निर्णय और आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसके द्वारा दिनांक 28 अगस्त, 2023 के समन आदेश के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता, 1860¹ की धारा 387 के तहत शिकायत वाद सं. 58 सन् 2022 की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द कर दिया गया है।

2. वर्तमान अपील के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:

परिवादी, अर्थात्, प्रो मनोज कुमार अग्रवाल, मेसर्स बालाजी ट्रेडर्स नामक फर्म के मालिक हैं, जो सुपारी का व्यवसाय करती है। संजय गुप्ता² ने कथित तौर पर इसी नाम से एक व्यवसाय शुरू

¹ एतस्मिनपश्चात् भा.दं.सं. के रूप में संदर्भित

² एतस्मिनपश्चात् आरोपी

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

किया, और ट्रेडमार्क और कॉपीराइट दावों के संबंध में पक्षों के बीच मुकदमे लंबित हैं। 22 मई, 2022 को, जब परिवादी अपने घर की ओर जा रहा था, तो आरोपियों ने तीन अज्ञात व्यक्तियों के साथ, जिनके हाथों में राइफलें थीं, उसे रोक लिया और उसे सुपारी का व्यवसाय बंद करने की धमकी दी। उन्होंने आगे धमकी दी कि वह व्यवसाय तभी जारी रख सकते हैं जब वह आरोपी व्यक्ति को प्रति माह पांच लाख का भुगतान करे। परिवादी के इनकार करने पर, आरोपियों ने न केवल उसे पीटा, बल्कि उसका अपहरण करने की भी कोशिश की। पुलिस द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट³ दर्ज करने में विफल रहने पर, उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973⁴ की धारा 200 के तहत शिकायत दर्ज कराकर न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

3. इस शिकायत के अनुसरण में, विचारण न्यायालय⁵ ने उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का विश्लेषण करने के बाद, आरोपी व्यक्ति के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला पाया और उसे भा.दं.सं. की धारा 387 के तहत सम्मन जारी किया।

4. व्यथित होकर, आरोपी व्यक्ति ने 28 अगस्त, 2023 के सम्मन आदेश को रद्द करने के लिए दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत एक विविध आवेदन दायर करके उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

5. उच्च न्यायालय ने विभिन्न न्यायिक निर्णयों का हवाला देते हुए कहा कि उद्घापन का मामला बनाने के लिए, एक आवश्यक तत्व यह है कि परिवादी द्वारा धमकी दी गई कि कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति को अभियुक्त को सौंप दिया जाए; और इस मामले में यह तत्व अनुपस्थित था क्योंकि अभियुक्त को कोई धनराशि नहीं सौंपी गई थी। न्यायालय ने आगे कहा कि चूँकि भारतीय दंड संहिता की धारा 383 के तहत उद्घापन का कोई अपराध नहीं बनता है, इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 387 के तहत भी कोई अपराध नहीं बनेगा, इसलिए यह मामला रद्द करने योग्य है।

पक्षकारों की दलीलें

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने गवाहों और परिवादी के बयानों के आधार पर सही ढंग से समन जारी किया, और उच्च न्यायालय ने गलत

3 एफआईआर

4 एतस्मिनपश्चात् दं.प्र.सं.

5 न्यायालय अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभाव क्षेत्र) जालौन प्लेस उरई

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

तरीके से 384 भा.दं.सं. से संबंधित निर्णयों पर भरोसा किया, न कि 387 भा.दं.सं. से संबंधित निर्णयों का।

7. प्रत्यर्थी सं. 2 के विद्वान अधिवक्ता ने धनंजय @ धनधनजय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य⁶ का सहारा लेते हुए कहा कि चूंकि उद्घापन का आवश्यक घटक, अर्थात् संपत्ति की डिलीवरी, पूरा नहीं हुआ है, परिणामस्वरूप, धारा 387 भा.दं.सं. के तहत आरोप कायम नहीं रह सकता। प्रत्यर्थी सं. 2, जो परिवादी के समान व्यवसाय चला रहा है, ने परिवादी के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराई थी, इस तरह यह एफआईआर सीधे प्रत्यर्थी के बौद्धिक संपदा अधिकारों के प्रवर्तन से जुड़ी है और प्रत्यर्थी के वैध कार्यों के प्रति जवाबी कार्रवाई के रूप में की गई है। आगे हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल⁷; और इंद्र मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य⁸ का सहारा लिया गया है, यह कहते हुए कि आपराधिक अभियोजन को उत्पीड़न के साधन के रूप में या अभियुक्त पर दबाव बनाने के गुप्त उद्देश्य से व्यक्तिगत प्रतिशोध के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। आगे, मोतीवाई फूलभाई पटेल एंड कंपनी बनाम आर. प्रसाद⁹; दिलीप कुमार शर्मा बनाम मध्य प्रदेश राज्य¹⁰; और तोलाराम रेलुमल बनाम बॉम्बे राज्य¹¹ का अवलंब यह तर्क देने के लिए लिया गया है कि चूंकि दंडात्मक कानूनों की व्याख्या और अर्थान्वयन सख्ती से किया जाना चाहिए, इसलिए धारा 387 भा.दं.सं. उद्घापन का एक गंभीर रूप है और इसे संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति की किसी भी डिलीवरी के बिना केवल धमकियों को कवर करने के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता है।

कानून की स्थिति

8. वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करने से पहले, यह समझना ज़रूरी है कि भारतीय दंड संहिता में अपराधों, उनके घटकों और उनके लिए अलग-अलग दंड का प्रावधान है। भारतीय दंड संहिता के अध्याय XVII में परिभाषित उद्घापन की प्रासंगिक धाराएँ नीचे दी गई हैं:

“धारा 383 में उद्घापन की परिभाषा दी गई है: जो कोई किसी व्यक्ति को स्वयं

उस व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को कोई क्षति करने के भय में साशय

6 (2007) 14 एससीसी 768

7 (1992) अनुपूरक. 1 एससीसी 335

8 (2007) 12 एससीसी 1

9 1968 एससीसी आनलाइन एससी 310

10 (1976) 1 एससीसी 560

11 (1954) 1 एससीसी 961

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

डालता है, और तद्वारा इस प्रकार भय में डाले गए व्यक्ति को, कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या मुद्रांकित कोई चीज जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सके, किसी व्यक्ति को परिदत्त करने के लिए बेइमानी से उत्प्रेरित करता है, वह "उद्घापन" करता है।"

384. उद्घापन के लिए दंड -जो कोई उद्घापन करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

385. उद्घापन करने के लिए किसी व्यक्ति को क्षति के भय में डालना – जो कोई उद्घापन करने के लिए किसी व्यक्ति को किसी क्षति के पहुंचाने के भय में डालेगा या भय में डालने का प्रयत्न करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

386. किसी व्यक्ति को मृत्यु या घोर उपहति के भय में डालकर उद्घापन – जो कोई किसी व्यक्ति को स्वयं उसकी या किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु या घोर उपहति के भय में डालकर उद्घापन करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

387. उद्घापन करने के लिए किसी व्यक्ति को मृत्यु या घोर उपहति के भय में डालना – जो कोई उद्घापन करने के लिए किसी व्यक्ति को स्वयं उसकी या किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु या घोर उपहति के भय में डालेगा या भय में डालने का प्रयत्न करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

388. मृत्यु या आजीवन कारावास, आदि से दंडनीय अपराध का अभियोग लगाने की धमकी देकर उद्घापन- जो कोई किसी व्यक्ति को स्वयं उसके विरुद्ध या किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध यह अभियोग लगाने के भय में डालकर कि उसने कोई ऐसा अपराध किया है, या करने का प्रयत्न किया है, जो मृत्यु से या आजीवन

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

कारावास से या ऐसे कारावास से , जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी , दंडनीय है, अथवा यह कि उसने किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा अपराध करने के लिए उत्प्रेरित करने का प्रयत्न किया है , उद्घापन करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से , जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी , दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा , तथा यदि वह अपराध ऐसा हो जो इस संहिता की धारा 377 के अधीन दंडनीय है, तो वह आजीवन कारावास से दंडित किया जा सकेगा।

389. उद्घापन करने के लिए किसी व्यक्ति को अपराध का अभियोग लगाने के भय में डालना -जो कोई उद्घापन करने के लिए किसी व्यक्ति को, स्वयं उसके विरुद्ध या किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध यह अभियोग लगाने का भय दिखलाएगा या यह भय दिखलाने का प्रयत्न करेगा कि उसने ऐसा अपराध किया है , या करने का प्रयत्न किया है , जो मृत्यु से या आजीवन कारावास से , या दस वर्ष तक के कारावास से दण्डनीय है, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से , जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी , दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा; तथा यदि वह अपराध ऐसा हो जो इस संहिता की धारा 377 के अधीन दंडनीय है, तो वह आजीवन कारावास से दंडित किया जा सकेगा।

(प्रभाव वर्धित)

9. उद्घापन से संबंधित सभी धाराओं पर एक नजर डालने से वास्तविक उद्घापन और उद्घापन के उद्देश्य से किसी व्यक्ति को भयभीत करने की प्रक्रिया के बीच स्पष्ट अंतर पता चल जाएगा।

10. धारा 383 उद्घापन को परिभाषित करती है, इसलिए सजा धारा 384 में दी गई है। धारा 386 और 388 उद्घापन के गंभीर रूप का प्रावधान करती हैं। ये धाराएं उद्घापन के वास्तविक कृत्य से संबंधित हैं, जबकि भा.दं.सं. की धाराएं 385, 387 और 389 उद्घापन के उद्देश्य से किए गए कृत्य के लिए दंड देने का प्रावधान करती हैं, भले ही उद्घापन पूरा न हुआ हो और संपत्ति न सौंपी गई हो। किसी व्यक्ति को अपराध करने की प्रक्रिया में ही चोट , मृत्यु या गंभीर चोट का भय होता है। भा.दं.सं. की धारा 387 उद्घापन करने से पहले एक चरण का प्रावधान करती है , जिसमें किसी व्यक्ति को 'उगाही करने के लिए' मृत्यु या गंभीर चोट का भय दिखाया जाता है ,

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

जो भा.दं.सं. की धारा 385 के समान है। इसलिए, धारा 387 भा.दं.सं., 385 भा.दं.सं. का गंभीर रूप है, न कि 384 भा.दं.सं. का।

11. उद्घापन के अपराध और उसके स्वरूपों पर विचार-विमर्श करने के बाद, हम दोनों धाराओं अर्थात् 383 और 387 भा.दं.सं. के आवश्यक तत्वों का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ते हैं, जिन पर उच्च न्यायालय ने विचार किया था।

12. इस न्यायालय द्वारा **आर.एस.नायक बनाम ए.आर.अंतुले**¹² मामले में निर्धारित भारतीय दंड संहिता की धारा 383 के अंतर्गत उद्घापन के आवश्यक तत्व इस प्रकार हैं:

“60. ...अपराध के मुख्य तत्व हैं:

(i) अभियुक्त ने किसी व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुंचाने का भय दिखाया हो;

(ii) किसी व्यक्ति को ऐसे भयभीत करना जानबूझकर किया गया हो;

(iii) अभियुक्त ने इस प्रकार भयभीत किए गए व्यक्ति को किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति, मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या मुहरबंद कोई वस्तु, जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सकता है, देने के लिए प्रेरित किया हो; और

(iv) ऐसा प्रलोभन बेईमानी से दिया जाना चाहिए।

किसी व्यक्ति के बारे में यह कहने से पहले कि उसने किसी व्यक्ति को किसी भी प्रकार की क्षति पहुंचाने का भय पैदा किया है, यह प्रतीत होना चाहिए कि उसने भविष्य में कोई ऐसा कार्य करने या न करने की धमकी दी है जिसे करने के लिए वह कानूनी रूप से बाध्य है। यदि कोई व्यक्ति केवल एक ऐसा कार्य करने का वादा करता है जिसे करने के लिए वह कानूनी रूप से बाध्य नहीं है और कहता है कि यदि उसे धन नहीं दिया गया तो वह वह कार्य नहीं करेगा, तो ऐसा कृत्य उद्घापन का अपराध नहीं माना जाएगा।...”

13. लेकिन भा.दं.सं. की धारा 387 के अवलोकन से इसके आवश्यक तत्व इस प्रकार प्रकट होते हैं:

12 (1986) 2 एससीसी 716

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

(क) अभियुक्त ने किसी व्यक्ति को मृत्यु या गंभीर चोट के भय में डाला हो;

(ख) ऐसा कृत्य उद्घापन करने के लिए किया गया हो;

अभिव्यक्ति ' के लिए' निम्नलिखित तरीकों से परिभाषित किया गया है:

"के लिए": के उद्देश्य से¹³

"के लिए" : करने के उद्देश्य से¹⁴

‘उद्घापन करने के लिए’ से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यह उद्घापन का अपराध करने की प्रक्रिया में है।

14. इस प्रकार, धारा 386 (भा.दं.सं. की धारा 384 का एक गंभीर रूप) और 387 भा.दं.सं. के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि पहले वाला अपने आप में एक कृत्य है , जबकि बाद वाला प्रक्रिया है; यह उद्घापन का अपराध करने से पहले की एक अवस्था है। विधानमंडल ने इस प्रक्रिया को एक अलग अपराध बनाकर इसे आपराधिक बनाने के लिए पर्याप्त सावधानी बरती। इसलिए, उद्घापन का अपराध करना इस धारा के अंतर्गत अपराध के लिए अनिवार्य शर्त नहीं है। यह निष्कर्ष निकालना सुरक्षित है कि धारा 387 भा.दं.सं. के अंतर्गत अभियोजन के लिए, संपत्ति का परिदान आवश्यक नहीं है।

15. राधा बल्लभ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹⁵ मामले में, इस न्यायालय ने एक ऐसे मामले की सुनवाई करते हुए, जिसमें बच्चे को छोड़ने के बदले फिरौती मांगी गई थी , यह टिप्पणी की कि यह धारा 386 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय नहीं हो सकता क्योंकि कोई फिरौती नहीं वसूली गई थी। इसलिए, धारा 387 भा.दं.सं. के तहत दोषसिद्धि सही थी। इसी प्रकार, गुरशरण सिंह बनाम पंजाब राज्य¹⁶ मामले में, न्यायालय ने धारा 387 भा.दं.सं. के तहत दोषसिद्धि को बरकरार रखा, जहाँ उद्घापन राशि का भुगतान नहीं किया गया था।

16. इसके अलावा, सोमसुंदरम बनाम राज्य¹⁷ मामले में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अन्य प्रावधानों के साथ , भारतीय दंड संहिता की धारा 387 के तहत दोषसिद्धि को

13 मेरियम वेब्सटर

14 कनसाइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, दसवां संस्करण 1999

15 (1995) अनुपूरक. 3 एससीसी 119

16 (1996) 10 एससीसी 190

17 (2020) 7 एससीसी 722

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

बरकरार रखा, इस तथ्य के आधार पर कि मृतक को लोहे की जंजीर और रस्सी से एक खाट से बाँधा गया था और करोड़ों रुपये देने या फिर दस्तावेज़ उनके पक्ष में निष्पादित करने की धमकी दी गई थी। ऐसा न करने पर, मृतक की हत्या कर दी गई। इस प्रकार, संपत्ति का कोई हस्तांतरण न होने के बावजूद, दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया क्योंकि यह माना गया कि धारा 387 भारतीय दंड संहिता उद्घापन के अपराध का एक गंभीर रूप है जिसमें पीड़ित को मृत्यु या गंभीर चोट का भय दिखाया जाता है।

17. उद्घापन से संबंधित दंडात्मक प्रावधानों को पढ़ने के बाद, इस न्यायालय द्वारा विभिन्न न्यायिक घोषणाओं के माध्यम से निर्धारित निरस्तीकरण के आवश्यक सिद्धांतों का अध्ययन करना भी आवश्यक है, जो दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को नियंत्रित करते हैं।

18. इस न्यायालय ने *बी.एन. जॉन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*¹⁸ मामले में, आपराधिक मामलों/शिकायतों/एफ.आई.आर. को रद्द करने के कई सिद्धांतों को दोहराया, जैसा कि *भजन लाल* (उपरोक्त) के समय में निर्धारित किया गया था:

“102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में, जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत और पुनः प्रस्तुत किया है, हमने उदाहरण के तौर पर मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां दी हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि किसी भी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें

18 2025 एससीसी आनलाइन एससी 7

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

ऊपरी तौर पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए , प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाते या अभियुक्त के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ दी गई अन्य सामग्री , यदि कोई हो, में लगाए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, जिससे संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा , संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जा सके।

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए विवादित आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां एफआईआर में आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं , बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध हैं, वहां पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना जांच की अनुमति नहीं है, जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के तहत परिकल्पित है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में कार्यवाही शुरू करने और जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करने वाला कोई विशिष्ट प्रावधान है।

(7) जहां आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण इरादे से की जाती है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण तरीके से अभियुक्त पर बदला लेने के गुप्त

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

उद्देश्य से और निजी एवं व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के उद्देश्य से शुरू की जाती है।

दलीप कौर बनाम जगनार सिंह¹⁹ में -

11. इसके अलावा इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उच्च न्यायालय अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग तभी करेगा जब आर. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता [(2009) 1 एससीसी 516: (2009) 1 एससीसी (क्रि) 567] में निर्धारित कानून के एक या अन्य प्रस्ताव आकर्षित होंगे, जो इस प्रकार हैं: (एससीसी पृष्ठ 523, पैरा 15)

“(1) उच्च न्यायालय सामान्यतः किसी आपराधिक कार्यवाही और विशेष रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट को तब तक रद्द करने के लिए अपने अंतर्निहित अधिकार का प्रयोग नहीं करेगा जब तक कि उसमें निहित आरोप, भले ही ऊपरी तौर पर दिए गए हों और पूरी तरह से सही माने गए हों, किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हों।

(2) उक्त प्रयोजन के लिए न्यायालय, बहुत ही अपवादात्मक परिस्थितियों को छोड़कर, बचाव पक्ष द्वारा अवलंबित किसी भी दस्तावेज पर विचार नहीं करेगा।

(3) ऐसी शक्ति का प्रयोग बहुत संयम से किया जाना चाहिए। यदि प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों से किसी अपराध के घटित होने का पता चलता है, तो न्यायालय उससे आगे नहीं जाएगा और अभियुक्त के पक्ष में किसी भी प्रकार की आपराधिक प्रवृत्ति या कृत्य का अभाव मानते हुए आदेश पारित करेगा।

(4) यदि आरोप से सिविल विवाद का पता चलता है, तो यह अपने आप में यह मानने का आधार नहीं हो सकता कि आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

(प्रभाव वर्धित)

इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने **नीहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड बनाम**

19 (2009) 14 एससीसी 696

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

महाराष्ट्र राज्य²⁰ मामले में निरस्तीकरण के सिद्धांतों का सारांश प्रस्तुत करते हुए यह माना है कि निरस्तीकरण की शक्ति का प्रयोग 'दुर्लभतम मामलों' में सावधानी के साथ किया जाना चाहिए , न कि एक सामान्य नियम के रूप में:

"13.4. "दुर्लभतम मामलों" में, सजगता के साथ , निरस्तीकरण की शक्ति का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए। (दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत निरस्तीकरण के लिए प्रयुक्त दुर्लभतम मामलों के मानक को मृत्युदंड के संदर्भ में तैयार किए गए मानदंड के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए , जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है।)

...

13.7. किसी शिकायत/एफआईआर को रद्द करना एक अपवाद होना चाहिए तथा यह सामान्य नियम नहीं बल्कि दुर्लभ होना चाहिए।

...

13.15. जब कथित अभियुक्त द्वारा एफआईआर को रद्द करने की प्रार्थना की जाती है, तो न्यायालय को, जब वह धारा 482 दं.प्र.सं. के तहत शक्ति का प्रयोग करता है, केवल इस बात पर विचार करना होता है कि एफआईआर में आरोप एक संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करते हैं या नहीं और उसे मेरिट के आधार पर इस बात पर विचार करने की आवश्यकता नहीं होती है कि आरोप एक संज्ञेय अपराध बनाते हैं या नहीं और न्यायालय को जांच एजेंसी /पुलिस को एफआईआर में आरोपों की विवेचना करने की अनुमति देनी होती है।"

हमारा दृष्टिकोण

19. यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि दंडात्मक कानूनों की कठोर व्याख्या की जानी चाहिए। न्यायालय को किसी भी वैधानिक प्रावधान में ऐसी कोई व्याख्या नहीं करनी चाहिए जो दंडात्मक दायित्व अधिरोपित करती हो।

20. इस न्यायालय की संविधान पीठ ने **तोलाराम रेलुमल** (उपरोक्त) मामले में यह टिप्पणी की

20 (2021) 19 एससीसी 401

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

हैं:

“8. ...और दंड विधानों की व्याख्या का यह एक सुस्थापित नियम है कि यदि किसी दंड प्रावधान पर दो संभावित और उचित व्याख्याएँ की जा सकती हैं, तो न्यायालय को उस व्याख्या की ओर झुकना चाहिए जो विषय को दंड से मुक्त करती है, न कि उस व्याख्या की ओर जो दंड लगाती है। न्यायालय को विधानमंडल के उद्देश्य को पूरा करने के लिए विधानमंडल द्वारा प्रयुक्त किसी शब्द के अर्थ को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है। जैसा कि लॉर्ड मैकमिलन ने *लंदन एंड नॉर्थ ईस्टर्न रेलवे कंपनी बनाम बेरिमन* [लंदन एंड नॉर्थ ईस्टर्न रेलवे कंपनी बनाम बेरिमन, 1946 एसी 278 पृष्ठ 295 (एचएल)] में बताया है: (एसी पृष्ठ 295)

“...जहां उल्लंघन के लिए दंड लगाया जाता है, वहां नियम की भाषा को उसके उचित और सामान्य अर्थ से परे खींचना वैध नहीं है, चाहे उसका उद्देश्य कितना भी अच्छा क्यों न हो।”

21. *एम. नारायणन नांबियार बनाम केरल राज्य*²¹ मामले में, इस न्यायालय ने दंड विधानों की व्याख्या के संबंध में प्रिवी काउंसिल द्वारा की गई टिप्पणियों को दोहराया:

“10. 'फ्रांसिस हार्ट डाइक (अपीलकर्ता) और हेनरी विलियम इलियट, और स्टीमटिंग या वेसल 'गौंटलेट' के मालिकों [लॉ रिपोर्ट्स प्रिवी काउंसिल अपील्स (4) 1872, पृष्ठ 184] में न्यायिक समिति का निर्णय, जिसे विद्वान अधिवक्ता ने निर्माण के लिए सहायता के रूप में उद्धृत किया है, सिद्धांत को स्पष्ट रूप से बताता है और इसलिए इसे उद्धृत किया जा सकता है: बोर्ड की ओर से बोलते हुए लॉर्ड जस्टिस जेम्स पृष्ठ 19 पर टिप्पणी करते हैं:

“निस्संदेह सभी दंड विधियों की व्याख्या सख्ती से की जानी चाहिए, अर्थात्, न्यायालय को यह देखना चाहिए कि जिस चीज़ पर अपराध के रूप में आरोप लगाया गया है, वह प्रयुक्त शब्दों के स्पष्ट अर्थ के भीतर है, और शब्दों को किसी भी धारणा पर जोर नहीं देना चाहिए कि कोई चूक हुई है, कि कोई चूक हुई है,

21 1962 एससीसी आनलाइन एससी 85

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

कि वह चीज़ इतनी स्पष्ट रूप से शरारत के अंतर्गत आती है कि अगर सोचा गया होता तो उसे शामिल करने का इरादा रहा होगा। दूसरी ओर, आरोपित व्यक्ति को यह कहने का अधिकार है कि आरोपित चीज़ यद्यपि शब्दों के भीतर है, परन्तु अधिनियम की भावना के भीतर नहीं है। लेकिन जहाँ चीज़ को शब्दों और भावना के भीतर लाया जाता है, वहाँ दंड अधिनियम को किसी अन्य उपकरण की तरह, प्रयुक्त भाषा के उचित सामान्य ज्ञान के अर्थ के अनुसार व्याख्यायित किया जाना चाहिए, और न्यायालय को दंड विधि की भाषा में कोई संदेह या अस्पष्टता नहीं ढूँढनी चाहिए या नहीं करनी चाहिए, जहाँ ऐसा संदेह या अस्पष्टता स्पष्ट रूप से किसी अन्य उपकरण में उसी भाषा में नहीं पाया या बनाया जा सकता है।”

22. इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने **दिलीप कुमार शर्मा** (उपरोक्त) में भी यह टिप्पणी की है कि दंडात्मक प्रावधान की कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए; अर्थात्, स्पष्ट, बाध्यकारी भाषा के अभाव में प्रावधान की व्यापक व्याख्या नहीं की जानी चाहिए।

23. इस न्यायालय ने **आर. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता**²² में दंड विधानों की कठोर व्याख्या पर चर्चा करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है:

“37. मैक्सवेल ने द इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टैट्यूट्स (12 वां संस्करण) में कहा है:

“दंड विधानों की कठोर संरचना चार तरीकों से प्रकट होती है: अपराध के निर्माण के लिए स्पष्ट भाषा की आवश्यकता; अपराध के तत्वों को निर्धारित करने वाले शब्दों की कठोर व्याख्या; दंड देने से पूर्व वैधानिक शर्तों को अक्षरशः पूरा करने की आवश्यकता; तथा आपराधिक प्रक्रिया और अधिकार क्षेत्र से संबंधित तकनीकी प्रावधानों के कठोर पालन पर जोर देना।”

38. क्रेज़ कानून (7 वें संस्करण, पृष्ठ 529) में कहा गया है कि दंडात्मक कानूनों की व्याख्या कठोरता से की जानी चाहिए। उक्त ग्रंथ के पृष्ठ 530 पर, यू.एस. बनाम विल्टबर्गर [5 वीं संस्करण 37: 18 यू.एस. (5 वीं व्हीट) 76 (1820)] का संदर्भ देते हुए, यह टिप्पणी इस प्रकार की गई है:

“आधुनिक समय में, निस्संदेह, एक सख्त व्याख्या और एक अधिक स्वतंत्र

22 (2009) 1 एससीसी 516

व्याख्या के बीच का अंतर लगभग मिट गया है, और अब प्रश्न यह है कि कानून की सही व्याख्या क्या है? मेरा कहना है कि एक आपराधिक कानून में आपको पूरी तरह आश्वस्त होना चाहिए कि आरोपित अपराध कानून के दायरे में है। यह नियम व्यक्तियों के अधिकारों के लिए कानून की कोमलता और इस स्पष्ट सिद्धांत पर आधारित है कि दंड देने की शक्ति विधायिका में निहित है, न्यायिक विभाग में नहीं, क्योंकि किसी अपराध को परिभाषित करना और उसकी सजा तय करना न्यायालय नहीं, बल्कि विधायिका का काम है।”

24. प्रावधान के दायरे को उन शब्दों को पढ़कर नहीं बढ़ाया जा सकता जो उसमें हैं ही नहीं। भारतीय दंड संहिता की धारा 387, एक दंडात्मक प्रावधान होने के नाते, इसकी कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए, और इसमें ऐसी कोई शर्त/आवश्यक तत्व नहीं शामिल किया जा सकता जो कानून/धारा में निर्धारित न हो। चूंकि धारा 387 के तत्वों में कोई अस्पष्टता नहीं है, इसलिए प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत **तोलाराम रेलुमल** (उपरोक्त) की टिप्पणियाँ उनके बचाव में नहीं आएंगी।

25. उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया तर्क, प्रथमदृष्टया, त्रुटिपूर्ण और अनुचित है। जब विधानमंडल ने अलग-अलग अवयवों और दंडों के साथ दो अलग-अलग अपराध बनाए हैं, तो एक के आवश्यक अवयवों को दूसरे में निर्दिष्ट करना उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया सही दृष्टिकोण नहीं है। धारा कहीं भी यह नहीं कहती है कि उद्घापन किसी व्यक्ति को मृत्यु या गंभीर चोट के भय में डालते हुए की जानी चाहिए। इसके बजाय, यह उल्टा है, अर्थात् उद्घापन करने के लिए किसी व्यक्ति को मृत्यु या गंभीर चोट के भय में डालना। उद्घापन अभी नहीं किया गया है; इसे करने की प्रक्रिया में ही व्यक्ति को भयभीत किया जाता है। किसी व्यक्ति को भयभीत करना किसी अभियुक्त को भा.दं.सं. की धारा 387 के तहत अपराध का दोषी बना देगा; इसके लिए भा.दं.सं. की धारा 383 के तहत प्रदत्त उद्घापन के सभी अवयवों को पूरा करना आवश्यक नहीं है। उच्च न्यायालय को **धनंजय** (उपरोक्त) पर भरोसा नहीं करना चाहिए था, क्योंकि वह मामला, प्रथमदृष्टया, तथ्यों के आधार पर स्पष्ट रूप से अलग है, इसका कारण यह है कि उसमें धारा 384 भा.दं.सं. के आरोपों पर विचार किया गया था, न कि 387 भा.दं.सं. के, तथा उद्घापन के तत्वों पर चर्चा की गई थी।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

26. मामले के मेरिट पर विचार किए बिना, हमारा मानना है कि यह मामला निरस्त करने योग्य नहीं है क्योंकि धारा 387 भा.दं.सं. के तहत अभियोजन के लिए दो आवश्यक तत्व, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, प्रथम दृष्टया शिकायत में उजागर हुए हैं, (क) कि परिवादी की ओर बंदूक तानकर उसे मृत्यु से भयभीत कर दिया गया है; और (ख) कि उस पर 5 लाख रुपये देने के लिए दबाव बनाने के लिए ऐसा किया गया था। निरस्त करते समय उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर गलत जोर दिया है कि उक्त राशि नहीं दी गई थी; यह विचार करने में विफल रहा कि धन/संपत्ति दी गई थी या नहीं, यह भी आवश्यक नहीं है क्योंकि अभियुक्त पर धारा 384 भा.दं.सं. के तहत आरोप नहीं लगाया गया है। किसी व्यक्ति को मृत्यु या गंभीर चोट से भयभीत करने के आरोप ही उसे धारा 387 भा.दं.सं. के तहत अभियोजन के लिए उत्तरदायी बनाते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि आपराधिक मामले के जवाबी विस्फोट का आरोप नकार दिया जाता है।

27. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, अपील तदनुसार स्वीकार की जाती है। 28 जून, 2024 का आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है और शिकायत वाद सं. 58 सन् 2022 से संबंधित कार्यवाही को विचारण न्यायालय की फाइल में पुनः स्थापित किया जाता है। पक्षकारों को 12 अगस्त, 2025 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है। पक्षकारों को पूर्ण सहयोग करने का भी निर्देश दिया जाता है और सुनवाई शीघ्रता से की जाए।

लंबित आवेदन, यदि कोई, निस्तारित किए जाते हैं।

मामले का परिणाम: अपील स्वीकार की गई।

हेडनोट्स द्वारा: अंकित ज्ञान

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।